अनुक्रम

क्र.सं.	आलेख/रचना	पृष्ठ
1.	मीरा-पद	05
	1. सन्त मीराबाई	
	(1) नैणा अटके रूप ..... (2) री म्हां बैठी जागां.....	
2.	मीरा-प्रशस्ति	06
	2. श्रीगोपीनाथ पारीक 'गोपेश', जयपुर (राजस्थान)	
	ओ मतवारी मीरा	
3.	सम्पादकीय	07—11
	3. सत्यनारायण समदानी, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)	
	भारत को केवल भारत कहा जाय : एक ऐतिहासिक भूल के परिष्कार का आह्वान	
4.	मीरा-सन्दर्भपक्ष	
	4. डॉ. शर्मीला, हिसार (हरियाणा)	
	मीराबाई की भक्ति और उनका संघर्ष	12—14
	5. डॉ. कुलविन्दर कौर, कपूरथला (पंजाब)	
	मीरा-काव्य में सौंदर्य की उदात्त चेष्टा	15—17
5.	भक्ति पक्ष	
	6. डॉ. नीलम, भीलवाड़ा (राजस्थान)	
	गीता में भक्तियोग की अवधारणा	18—20
6.	इतिहास पक्ष	
	7. श्री गुंजन अग्रवाल, नई दिल्ली	
	कब हुआ महाभारत का युद्ध	21—34
	8. डॉ. ओम प्रकाश लाल श्रीवास्तव, प्रयागराज (उत्तरप्रदेश)	
	प्राचीन भारतीय अभिलेखों में नैतिक शिक्षा	35—38
7.	वार्तासाहित्य पक्ष	
	9. श्री उपेन्द्रनाथ राय, मेटेली (प.बंगाल)	
	वार्ताओं के रचयिता	39—44
8.	भक्ति/लोक साहित्य पक्ष	
	10. कुमारी चन्द्रेश साहू, रायपुर (छत्तीसगढ़)	
	सूर का बाल वर्णन	45—50
	11. डॉ. रामस्वरूप, जोधपुर (राजस्थान)	
	मेहा गोदारा की लोकतात्विक दृष्टि	51—56
	12. श्री वीरमाराम पटेल, उदयपुर (राजस्थान)	
	दादूपंथ के संत कवि और पर्यावरण चेतना	57—60
	13. डॉ नवीन नन्दवाना, उदयपुर (राजस्थान)	
	चित्रकूट में राजसभा का सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व	61—69
9.	आधुनिक साहित्य पक्ष	
	14. डॉ. कविता मीणा, कोटा (राजस्थान)	
	वेदना और संवेदना के कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	70—74
	15. वर्षा चौहान, गंगापुर (भीलवाड़ा) (राजस्थान)	
	शैलेश मटियानी की कहानियों में दाम्पत्य भावना	75—78
	16. श्रीमती सरिता, भीलवाड़ा (राजस्थान)	
	अलका सरावगी के उपन्यासों में संघर्षशील व्यक्तित्व	79—84
	17. डॉ. सोफिया नलवाया, उदयपुर (राजस्थान)	
	The Steering Wheel : Managing the Thoughts in The Journey of Life.	85—87
10.	कला-संस्कृति पक्ष	
	18. शुभा त्रिपाठी एवं डॉ. बीना जैन, जयपुर (राजस्थान)	
	राजा रवि वर्मा के चित्रों में नारी का चित्रण	88—91
	19. डॉ. आरती श्योकण्ड, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)	
	भारतीय सांस्कृतिक उत्सवों में संगीत का महत्त्व	92—94
11.	समीक्षण पक्ष	
	20. श्री ललित शर्मा, झालावाड़ (राजस्थान)	
	राजस्थान के इतिहास के सरोकार : डॉ. हुकमसिंह भाटी अभिनन्दन ग्रन्थ	95—96
	21. डॉ. रमेश दवे, भोपाल (मध्यप्रदेश)	
	मालवा के भित्ति चित्र : कला की लोक स्मृति	97—101
12.	पाठकदीर्घा	102—111

चित्रकूट में राजसभा का सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व

(संदर्भ : मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत')

- डॉ. नवीन नन्दवाना, सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, (राजस्थान)-313001

हिंदी जगत में राष्ट्रकवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिंदी कविता के आधार स्तंभ हैं। जब खड़ी बोली की हिंदी कविता का लेखन प्रारंभ ही हुआ था तब वे हिंदी के एक अप्रतिम पुजारी के रूप में प्रकट हुए। उनकी कलम से फूटी कविता जन-जन के कंठ का हार बनी। हिंदी जगत में राष्ट्रकवि और साहित्यकारों के मध्य ददूदा नाम से चर्चित मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 03 अगस्त, 1886 को चिरगाँव, झाँसी में पिता सेठ रामचरण के घर माता काशीबाई की कोख से हुआ।

गुप्त जी की प्रारंभिक रचनाएँ जो कि ब्रजभाषा में रचित हैं, वे उस समय वैश्योपकारक में प्रकाशित होती थीं किंतु महावीर प्रसाद द्विवेदी के आशीर्वाद व प्रेरणा से उनको अपना काव्य गुरु स्वीकार करते हुए उन्होंने खड़ी बोली में काव्य रचना करना आरंभ किया। 'हेमंत' उनकी खड़ी बोली की प्रथम कविता थी जो उस समय 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई। गुप्त जी 1954 में राज्यसभा के सदस्य मनोनीत किए गए। साहित्य के प्रति गुप्त जी का मत बिल्कुल स्पष्ट था। वे साफ कहते थे कि-'केवल मनोरंजन कवि का कर्म नहीं होना चाहिए।' हिंदी कविता के संसार को गुप्त जी की अद्भुत देन हैं। 'रंग में भंग', 'जयद्रथ वध', 'भारत भारती', 'किसान', 'पंचवटी', 'साकेत', 'यशोधरा', 'विष्णुप्रिया' और 'जयभारत' गुप्त जी द्वारा रचित महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। 'भारत भारती' के माध्यम से गुप्त जी को बहुत ख्याति मिली। इस ग्रंथ के माध्यम से गुप्त जी ने देश-दशा पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा था कि -

"हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।।"[1]

इस प्रकार गुप्तजी की काव्य-दृष्टि में हमारा देश और उसकी चिंताएँ सदैव रही हैं। वे युगानुकूल कवि हैं। समसामयिक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक दशाएँ भी सदैव उनके ध्यान में रही हैं।

साहित्य के उपेक्षित पात्रों को केन्द्र बनाकर साहित्य रचना की प्रेरणा प्राप्त करने वाले गुप्त जी ने उर्मिला पर 'साकेत', बुद्ध की पत्नी यशोधरा के अवदान को रेखांकित करने के लिए 'यशोधरा' और चैतन्य महाप्रभु की पत्नी के अवदान का स्मरण दिलाने के लिए 'विष्णुप्रिया' नामक ग्रंथ की रचना की। सिद्धि प्राप्त कर बुद्ध तो अमर हो गए किन्तु यशोधरा एक उपेक्षित पात्र की तरह ही रही। एक पत्नी का त्याग और समर्पण रचनाकारों की लेखनी से अछूता ही रहा। वह स्त्री किसी भाँति कमजोर नहीं थी। वह अपने स्वामी के मार्ग में बाधा भी नहीं बनना चाहती थी किंतु बुद्ध उसे समझ नहीं पाए। इस बात का मलाल गुप्त जी की इस रचना में बहुत गहरी संवेदना के साथ हुआ है।

'साकेत' रामकथा तो है ही किंतु इसके माध्यम से गुप्त जी ने उर्मिला के विरह का गान कर साहित्य जगत में उपेक्षित रह रही महत्त्वपूर्ण पात्र को काव्यलोक में चर्चा का विषय बनाया। अपनी इस रचना के माध्यम से उन्होंने कवियों और लेखकों का ध्यान इस पात्र की ओर खींचा। 'साकेत' रचना की प्रेरणा गुप्त जी को अपने गुरु महावीरप्रसाद द्विवेदी से ही मिली। ग्रंथ में उन्होंने अपने गुरु के प्रति इस विनय भाव को अभिव्यक्ति भी दी है-

"करते तुलसी भी कैसे मानस नाद।
महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।।"[2]

'साकेत' का नवाँ सर्ग इस रचना का प्राण सर्ग है जिसमें उर्मिला का विरह प्रमुखता से वर्णित है। नवब्याहता उर्मिला अपने पति के विरह में किस प्रकार जीती है इस बात को हम 'साकेत' की इन पंक्तियों से समझ सकते हैं,

"मानस मंदिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप !
आँखों में प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग,
हुआ योग से भी अधिक, उसका विषम-वियोग !
आठ पहर चौंसठ घड़ी, स्वामी का ही ध्यान,
छूट गया पीछे स्वयं, उससे आत्मज्ञान।"[3]

उर्मिला अपनी करुणा के माध्यम से विश्व करुणा और विश्व प्रेम की बात करती हैं। विरह व्याकुला उर्मिला भी अपने को कमजोर न मानते हुए कहती हैं कि-

"औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ।
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ।।"[4]

इस प्रकार गुप्त जी ने उर्मिला का चित्रण कर संपूर्ण नारी समाज के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया है। 'साकेत' रचना के पीछे गुप्त जी का उद्देश्य उर्मिला की कथा का गान करना तो था ही पर वे केवल इतना ही नहीं चाहते थे। गुप्त जी रामभक्त कवि थे। और वे रामकथा का भी नए संदर्भों में गुणगान करना चाहते थे। अतः 'साकेत' के माध्यम से उन्होंने राम की कथा और उर्मिला की व्यथा दोनों को अभिव्यक्ति दी है। 'साकेत' बारह सर्गों में रचित आधुनिक हिंदी कविता का एक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। जिस प्रकार 'साकेत' का नवाँ सर्ग उर्मिला पर केंद्रित एक महत्त्वपूर्ण सर्ग है, ठीक उसी प्रकार 'साकेत' का आठवाँ सर्ग भी चर्चित है। यहाँ चित्रकूट की राजसभा का अपना सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व है। भरत का चरित्र और कैकेयी का पश्चात्ताप यहाँ एक नूतन दृष्टि प्रदान करता है। गुप्त जी के लेखन के विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में लिखते हैं कि- "गुप्त जी वास्तव में सामंजस्यवादी कवि हैं, प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करने वाले अथवा मद में झूमने (या झीमने) वाले कवि नहीं। सब प्रकार की उच्चता से प्रभावित होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त है। प्राचीन के प्रति पूज्यभाव और नवीन के प्रति उत्साह दोनों इनमें हैं।"[5]

'साकेत' का आठवाँ सर्ग भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। इस सर्ग में गुप्त जी ने चित्रकूट के घटनाक्रमों का वर्णन करते हुए भरत और कैकेयी के चरित्रों को एक नूतन दृष्टि से चित्रित किया है। सर्ग की शुरुआत में ही वे समस्त साकेत समाज को वहाँ एकत्र दर्शाते हैं। यहाँ गुप्त जी लिखते हैं कि-

"चल चपल कलम, निज चित्रकूट चल देखें,
प्रभु-चरण-चिह्न पर सफल भाल-लिपि लेखें।
सम्प्रति साकेत-समाज वहीं है सारा,

सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा।"[6]

सही भी था वहाँ सभी माताएँ, भरत सहित समस्त अयोध्यावासी राम को मनाने आ जाते हैं अतः उस समय चित्रकूट में संपूर्ण साकेत समाज एकत्र हो जाता है। अब राम, सीता और जानकी को वन की उस कुटिया में ही राजभवन-सा एहसास होने लगता है। तभी तो गुप्त जी की कलम लिखती है कि-

"कहता है कौन कि भाग्य ठगा है मेरा ?
वह सुना हुआ भय दूर भगा है मेरा।
कुछ करने में अब हाथ लगा है मेरा,
वन में ही तो ग्रार्हस्थ्य जगा है मेरा।"[7]

अर्थात् यहाँ गुप्त जी भारतीय समाज की उस श्रेष्ठता को दर्शाना चाह रहे हैं जो यह मानता है कि मन यदि प्रसन्न है तो वह वन में भी राजभवन सा सुखी जीवन जी सकता है। वास्तव में सुख सबके साथ जीने में है न कि धन व वैभव में। तभी तो कैकेयी के बार-बार आग्रह पर राम उनसे यह कह देते हैं कि-

"सन्तुष्ट मुझे तुम देख रही हो वन में,
सुख धन-धरती में नहीं, किन्तु निज मन में।"[8]

सीता वन में जीवन जीते हुए किसी भाँति अपने को महारानी मानते हुए वनबालाओं से पृथक् नहीं रखती हैं। वह उन वनवासी जाति की बालिकाओं को बुलाकर न केवल स्नेह का व्यवहार करती हैं बल्कि यह कहती हैं कि वे सीता को भी यथोचित कार्य बतावें।

"ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल-बालाओं,
मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई, आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,
दो अहो! नव्यता और भव्यता पाओ।"[9]

इस प्रकार सीता हमारे सम्मुख यह आदर्श स्थापित करती हैं कि चाहे हम कितने ही बड़े और समृद्ध क्यों न हो जावें, हमें अपने समाज जनों के प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। रानी होकर वनवालाओं से करने योग्य कार्य माँगना हमें एक नूतन दृष्टि प्रदान करता है। रेवती रमण लिखते हैं कि- "पौराणिक कथानक होने पर भी 'साकेत' में युगधर्म की अभिव्यक्ति पूरी क्षमता से हुई है। विशेषतः सीता की दिनचर्या में गृहिणी भारतीय नारी का आदर्श गतिमान रहा है। गुप्त जी पारिवारिकता को बनाए रखते हैं। संयुक्त परिवार भारतीय समाज की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसके अतिरिक्त स्वाधीनता की चेतना भी साकेत में अरूप नहीं है। श्रम की महत्ता, आत्मनिर्भरता आदि के बारे में साकेत के अष्टम सर्ग में गुप्त जी के विचार मिलते हैं।"[10]

राम व भरत के संवाद हमारे समक्ष आदर्श जीवन और आपसी प्रेम व सौहार्द का संदेश देते हैं। भरत के आगमन पर राम का यह पूछना कि भरत तुम्हारा अभिप्सित क्या है ? इस पर भरत द्वारा स्वयं पर जो व्यंग्य किया जाता है, वह हमें यह बता देता है कि इतने बड़े साम्राज्य का मोह त्यागकर भरत किस प्रकार अपने भाई को महत्त्व देते हैं। तभी तो वे कहते हैं कि-

"हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी?
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब, तब भी?

पाया तुमने तरु-तले अरण्य-बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?
तनु तड़प तड़प कर तप्त तात ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा ?
हा! इसी अयश के हेतु जनम था मेरा,
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा।
अब कौन अभीप्सित और आर्य वह किसका ?
संसार नष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्हीं अभीप्सित मेरा?"[11]

भरत के इस आदर्श को अपनाकर हम आज के पारिवारिक जीवन की कई समस्याओं के समाधान खोज सकते हैं। आज बहुत छोटी-छोटी सी संपतियों को लेकर भाइयों में विवाद द्रष्टव्य होते हैं। ऐसे में हम राम व भरत के इस भाव को जीवन में अपनाकर अपनी कई समस्याओं का समाधान खोज सकते हैं। कैकेयी का पश्चाताप भी यहाँ गुप्त जी ने पूरी विशिष्टता के साथ वर्णित किया है। यहाँ कैकेयी राम के वनवास व दशरथ की मृत्यु आदि घटनाओं के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानते हुए अपनी भूल स्वीकार करती है। उसे इस बात का दुःख है कि वह भरत जैसे श्रेष्ठ पुत्र को जन्म देकर भी उसकी श्रेष्ठता को समझ नहीं पाई तभी तो उसने राम के लिए वनवास और भरत के लिए राजगद्दी की कामना की। वह स्पष्टतः यहाँ स्वीकार करती है कि-

"हाँ, जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन लें तुमने स्वयं अभी यह माना।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया।
दुर्बलता का ही चिह्न विशेष शपथ है,
पर, अवलाजन के लिए कौन-सा पथ है ?
यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ,
तो पति समान ही स्वयं पुत्र भी खोऊँ।
ठहरो, मत रोको मुझे, कहूँ सो सुन लो,
पाओ यदि उसमें सार उसे सब चुन लो।
करके पहाड़-सा पाप मौन रह जाऊँ?
राई भर भी अनुताप न करने पाऊँ?"[12]

वह यहाँ इसे स्वीकार करने में भी तनिक भी नहीं हिचकिचाती है कि वह जो भी पश्चाताप कर रही है, वह भरत या किसी अन्य के बहकावे में आकर नहीं कर रही है। यह इस बात का संदेश है कि हम जीवन में कभी कुछ भूलें कर लेते हैं तो उसे स्वीकार कर उस पर पश्चाताप करने की ताकत भी हम में होनी चाहिए। यहाँ गुप्त जी ने कैकेयी का एक नया ही रूप उजागर किया है। वह साफ-साफ शब्दों में सभा के सम्मुख अपनी कामना बताती है कि-

"थूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे, क्यों चूके ?

छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे?''[13]

साकेत के इस सर्ग में कैकेयी का हम एक माँ वाला रूप भी देख सकते हैं। कितना भी कुछ कर लेने पर भी उसकी कामना है कि कैकेयी से संसार उसके भरत की माँ होने का पद न छीने। वह इस बात को भी भरी सभा के सामने स्वीकारती है कि उसने अपने पुत्र भरत का बाह्य मात्र ही देखा है। वह उसके हृदय के विराट पक्ष को कभी समझ नहीं पाई इसी कारण आज समस्त बाधाएँ उसे झेलनी पड़ रही हैं।

''कहते आते थे अभी यही नर-देही,
'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।'
अब कहें सभी यह हाय! विरुद्ध विधाता,
'है पुत्र पुत्र ही, रहे कुमाता माता।'
बस मैंने इसका वाह्य मात्र ही देखा,
दृढ़ हृदय न देखा, मृदुल गात्र ही देखा।
परमार्थ न देखा, पूर्ण स्वार्थ ही साधा,
इस कारण ही तो हाय आज यह बाधा!
युग युग तक चलती रहे कठोर कहानी-
'रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।'
निज जन्म जन्म में सुने जीव यह मेरा-
'धिक्कार उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।''[14]

वास्तव में अब यहाँ कैकेयी एक वात्सल्यमयी माँ है। वह भरत और राम आदि के प्रति अपने वात्सल्य के भाव दर्शाती हैं। ''चित्रकूट में दुख और सुख के मिश्रित आवेग का एक सागर उमड़ उठा है जिसमें कैकेयी का कलंक कच्चे रंग के समान बह गया है। वास्तव में साकेत के इस प्रसंग का गौरव अक्षय है। कवि की भावुकता की सूक्ष्म ग्राहिणी शक्ति, प्रवणता उसका विस्तृत अधिकार और प्रवाह अद्भुत है। उसकी मूल प्रेरणा है उपेक्षित-घृणित के प्रति सहानुभूति जिसका उद्भव महान आत्माओं में ही संभव है। साथ ही हमें यहाँ मानव-मनोदशा का गंभीर अध्ययन, उसके पल-पल परिवर्तित संकल्प विकल्पों की सूक्ष्म पकड़ मिलती है और मिलती है मौलिक सृजन क्षमता। कैकेयी का चरित्र उज्जवल हो गया है। वह अब 'कुटिल कैकेयी' नहीं रही ! आज वह शुभ्र वसना श्वेत-केशनि माता है, जिसका वात्सल्य अनुकरणीय है।'' वह मानती है कि महास्वार्थ के कारण उसने ये सब किया है। किंतु आज उसे बहुत पछतावा है। उसके पश्चाताप भरे वचन सुनकर सभा में उपस्थित लोग भी बोल पड़ते हैं-

''सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।
पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई-
सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।''[15]

कैकेयी साफ शब्दों में राम से यह कहती है कि-

''छल किया भाग्य ने मुझे अयश देने का,
बल दिया उसी ने भूल मान लेने का।
अब कटे सभी वे पाश नाश के मेरे
मैं वही कैकेयी, वही राम तुम मेरे।''[17]

यहाँ कैकेयी के पश्चाताप के साथ-साथ उसका वात्सल्य भाव और पश्चाताप दोनों अभिव्यक्त हुए हैं। वह राम को यह स्पष्ट बताना चाहती है कि जब तुम छोटे थे तो यदाकदा जब अर्द्धरात्रि को नींद में रो पड़ते थे तो कौशल्या तुम्हें मेरे पास ही लाती थी। और तुम मेरी गोद में आकर ही चुप होते थे। मैं तुम्हारी वही माँ हूँ और आज भी तुम मेरे वही राम हो। इसलिए मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर घर को लौट चलो।

वह कैकेयी एक स्वाभिमानी स्त्री थी। वह क्षत्राणी होने के नाते अपने धर्म और मर्यादा को जानती थी। इसी कारण वह राम से कहती है कि-

''सहती कोई अपमान तुम्हारी अम्बा ?
पर हाय, आज वह हुई निपट नालम्बा।
मैं सहज मानिनी रही, वही क्षत्राणी,
इस कारण सीखी नहीं दैन्य यह वाणी।''[18]

अपने पतिव्रत धर्म का पालन करने में भी वह पीछे नहीं रही। कभी पति की रक्षा कर उसने उनसे जो दो वचन लिए, दुर्भाग्यवश जब वह उसका गलत उपयोग कर बैठती है तो उस पर अपनी भूल स्वीकार करने में भी नहीं चूकती है। वह राम के वनगमन, दशरथ के देवलोकगमन और राम-भरत के स्नेह सब पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करती है-

''यों ही तुम वन को गए, देव सुरपुर को,
मैं बैठी ही रह गई लिए इस उर को !
बुझ गई पिता की चिता भरत-भुजधारी,
पितृभूमि आज भी तप्त तथापि तुम्हारी।
भय और शोक सब दूर उड़ाओ उसका,
चलकर सुचरित, फिर हृदय जुड़ाओ उसका।
हो तुम्हीं भरत के राज्य, स्वराज्य सम्हालो।
मैं पाल सकी न स्वधर्म, उसे तुम पालो।
स्वामी को जीते जी न दे सकी सुख मैं,
मर कर तो उनको दिखा सकूँ यह मुख मैं।
मर मिटना भी है एक हमारी क्रीड़ा,
पर भरत-वाक्य है-सहूँ विश्व की व्रीड़ा।
जीवन-नाटक का अंत कठिन है मेरा,
प्रस्ताव मात्र में जहाँ अधैर्य अँधेरा।
अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता,
करती है तुमसे विनय आज यह माता।''[19]

डॉ. शिव कुमार शर्मा अपने ग्रंथ 'हिंदी साहित्य : युग और प्रवृतियाँ' में लिखते हैं कि- ''गुप्त जी के राम, वाल्मीकि और तुलसी के राम न होकर सामान्य मानव हैं और अपनी मानवता के उत्कर्ष द्वारा ईश्वरत्व के अधिकारी हैं। कैकेयी के प्रति कवि ने पर्याप्त संवेदनशीलता से काम लिया है।''[20]

राम का आदर्श रूप भी यहाँ द्रष्टव्य होता है। कैकेयी द्वारा वनवास और पिता के असामयि

देवलोकगमन के बाद भी राम कैकेयी के प्रति किसी प्रकार का उपेक्षा भाव नहीं रखते। वे स्वयं सभी घटनाओं के बाद भी कैकेयी को उतना ही सम्मान देते हैं, जितना पहले दिया करते थे। यहाँ वचनपालन का भाव भी द्रष्टव्य होता है। कैकेयी द्वारा बार-बार घर लौटने के आग्रह पर वे कहते हैं कि-

"माँ, अब भी तुमसे राम विनय चाहेगा ?
अपने ऊपर क्या आप अद्रि ढाहेगा ?
अब तो आज्ञा की अम्ब, तुम्हारी बारी,
प्रस्तुत हूँ मैं भी धर्मधनुर्धृतिधारी।
जननी ने मुझको जना, तुम्हीं ने पाला,
अपने साँचे में आप यत्न से ढाला।
सब के ऊपर आदेश तुम्हारा मैया,
मैं अनुचर पूत सपूत, प्यार का भैया।
वनवास लिया है मान तुम्हारा शासन,
लूँगा न प्रजा का भार, राज-सिंहासन ?
पर यह पहला आदेश प्रथम हो पूरा,
वह तात-सत्य भी रहे न अम्ब, अधूरा,
जिस पर हैं अपने प्राण उन्होंने त्यागे
मैं भी अपना व्रत-नियम निबाहूँ आगे।"[21]

राम प्रेम व कर्तव्य की तुलना करते हुए कैकेयी से यह कहते हैं कि प्रेम और कर्तव्य में हमें कर्तव्य को प्रमुखता देनी चाहिए। इस समस्त संवाद के बीच जब कोई हल दिखता द्रष्टव्य नहीं होता है, तब राम यह निर्णय भरत पर छोड़ देते हैं। यहाँ हमें भरत का भी एक नया ही रूप दिखाई पड़ता है। वह राम को इस बात पर मनाने लगते हैं कि यदि नियम निभाना ही है तो वनवास की अवधि मैं अर्थात् भरत यहाँ रहकर पूरी करूंगा और आप अयोध्या जाकर राज संभालें। यहाँ गुप्त जी आदर्श पारिवारिक व्यवस्था को अभिव्यक्त कर रहे हैं। गुप्त जी यहाँ भारतीय पारिवारिक-सामाजिक जीवन में मत की स्वतंत्रता को भी वाणी प्रदान करते हैं।

"मत की स्वतन्त्रता विशेषता आर्यों की,
निज मत के ही अनुसार क्रिया कार्यों की।"[22]

भरत का राजसिंहासन न स्वीकार करते हुए यह प्रस्ताव देना कि यदि राम अपने वचन के प्रति कटिबद्ध हैं तो यह सिंहासन सीता को संभालना चाहिए।

"जब तक पितुराज्ञा आर्य यहाँ पर पालें,
तब तक आर्या ही चलें,- स्वराज्य सँभालें।'
'भाई, अच्छा प्रस्ताव और क्या इससे ?
हमको-तुमको संतोष सभी को जिससे।'
'पर मुझको भी हो तब न?' मैथिली बोलीं-
कुछ हुई कुटिल-सी सरल दृष्टियाँ भोलीं।"[23]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आज के समाज के लोग जब छोटे-छोटे स्वार्थों के कारण एक-दूसरे के अधिकार हनन में पीछे नहीं रहते वहाँ राम, भरत, कैकेयी और सीता आदि एक आदर्श रूप

में हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं। इतने बड़े राजसिंहासन के प्रति भी किसी के मन में किसी प्रकार का कोई स्वार्थभाव नहीं है। यह आज के समाज के लिए एक बड़ा संदेश है। भरत राम की चरणपादुका माँगते हैं और राम के नाम से शासन का भार स्वीकारते हैं। वे स्वयं राजा होंगे उन्हें यह कदापि स्वीकार नहीं। इस बात पर उनके चरित्र के इस श्रेष्ठतम पक्ष पर सीता के हृदय से असीम आशीर्वाद निकलता है। वह कहती हैं कि-

"इस निज सुहाग की सुप्रभात वेला में,
जाग्रत जीवन की खण्डमयी खेला में,
मैं अम्बा-सम आशीष तुम्हें दूँ, आओ,
निज अग्रज से भी शुभ्र सुयश तुम पाओ!"[24]

इस सर्ग में हमें भरत की उदारता, आदर्श भाई वाला रूप द्रष्टव्य होता है। उसे उसकी माता के किए पर पछतावा है। और वह चाहता है कि किसी प्रकार राम वापस अयोध्या लौट चलें। कई युक्तियों और सुझावों पर भी जब उसे अपने इस लक्ष्य में सफलता नहीं मिलती है तो वह बोल पड़ता है कि-

"हे देव, भार के लिए नहीं रोता हूँ,
इन चरणों पर ही मैं अधीर होता हूँ।
प्रिय रहा तुम्हें यह दयाधृष्टलक्षण तो,
कर लेंगी प्रभु-पादुका राज्य-रक्षण तो।
तो जैसी आज्ञा, आर्य सुखी हों वन में,
जूझेगा दुख से दास उदास भवन में।
बस, मिलें पादुका मुझे, उन्हें ले जाऊँ,
बस उनके बल पर, अवधि-पार मैं पाऊँ।"[25]

यहाँ गुप्त जी ने कैकेयी के पश्चाताप को भी इस भाँति प्रस्तुत किया है कि पाठकों के हृदय में उसके प्रति सहानुभूति के भाव जगने लगते हैं। यहाँ हम कैकेयी की विवशता, वात्सल्य, स्वाभिमानिनी रूप के साथ-साथ उसके पश्चाताप, पतिपरायणता, विनम्रता और अनुशासन के भावों को देख सकते हैं। राम का आदर्श रूप तो सबके सम्मुख द्रष्टव्य है ही। वे लाख समझाने पर भी अपने कर्तव्यपथ पर अडिग रहते हैं। वे 'रघुकुल रीति सदा चली आई। प्राण जाई पर वचन न जाई' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं। वे प्रेम और कर्तव्य दोनों में से कर्तव्य पथ को चुनते हैं। इस प्रकार 'साकेत' का यह आठवाँ सर्ग अपना विशेष महत्त्व रखता है।

गुप्त जी किसी अन्य स्वर्ग की कल्पना नहीं करते बल्कि वे इसी धरा को स्वर्ग बनाने के अभिलाषी हैं। तभी तो वे साकेत में राम के माध्यम से इस बात का उद्घोष करते हैं कि,

"संदेश नहीं मैं यहाँ स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।"[26]

वे कामना करते हैं कि-

"मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारतवर्ष में गूँजें हमारी भारती।"[27]

और आज वर्षों बाद भी गुप्त जी के गान संपूर्ण भारतवर्ष में गुँजायमान हैं।

सदर्भ सूची–
1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 11
2. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, निवेदन, साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, 2015, पृष्ठ 01
3. वही, पृष्ठ 168
4. वही, पृष्ठ 138
5. रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, नवीनतम, पृष्ठ 407
6. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, 2015, पृष्ठ 136
7. वही, पृष्ठ 138
8. वही, पृष्ठ 160
9. वही, पृष्ठ 140
10. रेवती रमण : मैथिलीशरण गुप्त, मोनोग्राफ, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 40
11. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, 2015, पृष्ठ 154
12. वही, पृष्ठ 154–155
13. वही, पृष्ठ 155
14. वही, पृष्ठ 155–156
15. डॉ. नगेंद्र : साकेत एक अध्ययन, साहित्य रत्न भंडार, आगरा, प्रथम संस्करण, 1940, पृष्ठ 109–110
16. वही, पृष्ठ 156
17. वही, पृष्ठ 157
18. वही, पृष्ठ 158
19. वही, पृष्ठ 158
20. शिव कुमार शर्मा : हिंदी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, नवभारत प्रकाशन, जोधपुर, 2010, पृष्ठ 479
21. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, साकेत प्रकाशन, चिरगाँव, झाँसी, 2015, पृष्ठ 159
22. वही, पृष्ठ 162
23. वही, पृष्ठ 163
24. वही, पृष्ठ 164
25. वही, पृष्ठ 164–165
26. वही, पृष्ठ 146
27. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014, पृष्ठ 09

ए-जी-9, रामेश्वरम् अपार्टमेंट, हनुमान नगर, मनवाखेड़ा,
उदयपुर (राजस्थान) 313003
संपर्क : 9828351618, 9462751618
nandwana.nk@gmail.com

मीरायन तथा मीरा स्मृति संस्थान के
पत्र व्यवहार का नया पता एवं सम्पर्क सूत्र
मकान नं. 25, फ्रेण्ड्स कॉलोनी, शिवशक्ति नगर के पास
पार्वती गार्डन के पीछे, बापूनगर (पूर्व)
मेंता, चित्तौड़गढ़-312001 (राज.)
samdanisatya@gmail.com